THE ECONOMIC TIMES

Date: 29-07-17

Mandate disclosure of beneficial owner

ET Editorials

The Lok Sabha has amended the Companies law, reportedly to facilitate compliance. The Centre can now cap the number of subsidiaries a company can have, and also limit the number of intermediary companies through which investment can be made. The aim is to check the proliferation of shell companies without an operational business. To deem all shell companies as being underhand is not correct. A large conglomerate may, indeed, require to have many holding companies that conduct business separately. So, instead of limiting the number of holding companies, a more sensible way out would be for the government to mandate that companies declare their beneficial owners, following the practice in the UK.Already, Aadhaar gives every Indian resident a distinct digital identity. The linking of Aadhaar to the permanent account number eliminates duplicate PANs for individuals. Similarly, a unique legal identifier can be instituted for all corporate entities as well. And if every such entity has to disclose its beneficial owner, the ultimate beneficial owner can be tracked down along a chain of holding and cross-holding companies. Having committed to identifying the beneficial ownership of companies, the G20 must get member-countries to adopt the requirement of a unique legal identifier.Rightly, the amendments raise the threshold for the simple compliance scheme to Rs 100 crore from Rs 20 crore, making more companies eligible. Easier rules on managerial remuneration —the original law had made the Centre's nod mandatory to raise remuneration of the management beyond prescribed limits — is also welcome. The harmonisation of insider trading rules with those of Sebi makes sense. The government should swiftly notify the rules, to improve corporate governance.

दैनिक जागरण

Date: 29-07-17

इंटरनेट सुरक्षा का कठिन सवाल

विराग गुप्ता [लेखक सुप्रीम कोर्ट में वकील हैं]

पिछले कुछ दिनों से उच्चतम न्यायालय की संविधान पीठ में निजता, डाटा और बच्चों की सुरक्षा समेत अनेक मामलों पर लंबी बहस चल रही है। निजता के बारे में छह दशक पहले एमपी शर्मा और खड़क सिंह मामलों में उच्चतम न्यायालय के दो पुराने फैसलों पर बहस उपलब्ध है, लेकिन उनका संबंध तो सरकार की निगरानी और छापे मारने के अधिकार से था जिन पर अब कोई सवालिया निशान है ही नहीं। 1950 में इंटरनेट और कंप्यूटर डाटा के बारे में संविधान या अन्य कानूनों में प्रावधान ही नहीं था। इस वजह से उच्चतम न्यायालय के पुराने फैसले आज के दौर में बहुत **प्रासंगिक** नहीं हैं। संविधान पीठ में जज चंद्रचूड़ ने सही सवाल उठाया कि जब एप्प द्वारा निजी जानकारी हासिल करने पर कोई आपत्ति नहीं है तो फिर आधार पर सरकार के अधिकार और डाटा के कथित दुरुपयोग पर सवाल क्यों उठाए जा रहे हैं? इंटरनेट कंपनियों की गैर-कानूनी चौधराहट रोकने के बजाय निजी संवेदनशील डाटा पर सरकार को असीमित अधिकार देने का तर्क कैसे दिया जा सकता है? यूआइडी के पूर्व चेयरमैन और आधार के प्रणेता नंदन नीलेकणी ने भी अब डाटा पर जनता के अधिकार की मांग की है, लेकिन आधार अधिनियम का कानून बनाते समय अगर उन्होंने **स्पष्ट** अनुशंसा की होती तो आज शायद इतना विवाद नहीं पैदा होता। सरकार के मंत्रालयों में इस मामले में सहमति नहीं दिखती। आधार मामले में निजता के अधिकार

पर सवाल खड़े करने वाली सरकार वाट्सएप्प मामले में हलफनामा दायर करके डाटा के अधिकार को अनुच्छेद 21 के तहत मौलिक अधिकार मान लेती है।भारतीय दंड संहिता और सूचना प्रौद्योगिकी कानून में निजता, सरकारी डाटा और निजी डाटा की सुरक्षा और व्यावसायिक इस्तेमाल रोकने के लिए संसद ने पर्याप्त कानूनी प्रावधान बनाए हैं।

एप्पल, गूगल, फेसबुक, ट्विटर एवं वाट्सएप्प जैसी कंपनियां व्यापार के माध्यम से बड़े पैमाने पर लाभ कमा रही हैं, परंतु भारत में इन कंपनियों के दफ्तर नहीं होने से उन पर भारत के कानून लागू नहीं होते। कुछ माह पहले भी उच्चतम न्यायालय ने लंबी सुनवाई के बाद माना था कि संता-बंता के आपत्तिजनक चुटकुलों को इंटरनेट पर प्रसारित होने से रोकने के लिए आदेश कैसे दिया जा सकता है? उच्चतम न्यायालय द्वारा इसके पहले लिंग जांच संबंधी विज्ञापन रोकने के लिए इंटरनेट कंपनियों को आदेश दिए गए थे जिनका अभी तक पूरी तरह से पालन कराने में सरकार विफल रही है। इंटरनेट कंपनियों पर भारत के कानून कैसे लागू हों, इस पर बहस करने के बजाय उच्चतम न्यायालय में निजता के मौलिक अधिकार पर अकादमिक बहस से समस्या कैसे सुलझेगी?भारत में पोर्नोग्राफिक कंटेंट का निर्माण या प्रसारण गैर-कानूनी है। इसके लिए पांच साल की सजा और 10 लाख तक के जुर्माने का प्रावधान है। आइटी एक्ट और 2011 में बनाए गए नियमों के अनुसार पोर्नोग्राफिक कंटेंट और अश्लील वेब साइट्स को रोकने के लिए इंटरनेट सर्विस प्रोवाइडर्स या इंटरमीडियरी की कानूनी जवाबदेही है। पोर्नोग्राफी मामले में पिछले चार वर्षों से उच्चतम न्यायालय में सुनवाई चल रही है, जहां सरकार ने बताया कि पिछले महीने पोर्नोग्राफी की 3500 वेब साइट्स को ब्लॉक किया गया। पोर्नोग्राफी के अरबों डॉलर के विश्व बाजार में भारत की पांचवीं रैंक है।

शायद इसीलिए ब्लॉक की गई तमाम वेब साइट्स नए नाम से फिर बाजार में आ जाती हैं। आइएसपी से कानून का पालन कराके पोर्नोग्राफी पर रोक लगाने में विफल सरकार ने स्कूलों में जैमर लगाने का बात कही है। क्या देश भर के स्कूलों में जैमर लगाने के लिए सरकार के पास संसाधन हैं? सवाल यह भी है कि क्या बच्चों को मोबाइल या फिर घर के कंप्यूटर पर पोर्नोग्राफी देखने से रोका जा सकता है? नॉर्टन की सर्वे रिपोर्ट के अनुसार भारत में सार्वजनिक स्थानों पर इंटरनेट की फ्री वाई-फाई सुविधा का हर तीसरे व्यक्ति द्वारा नग्नता देखने के लिए इस्तेमाल होता है। सरकारी दफ्तर, स्कूल-कॉलेजों और अन्य सार्वजनिक स्थानों के कंप्यूटर और वाई-फाई में पोर्नोग्राफिक वेब साइट्स को यदि ब्लॉक कर दिया जाए तो स्कूल और बसों में जैमर लगाने की जरूरत ही क्यों पड़ेगी? अधकचरे प्रतिबंधों से पुलिसिया भ्रष्टाचार के साथ सीसीटीवी और जैमर इत्यादि का कारोबार बढ़ जाता है। बतौर उदाहरण सब जानते हैं कि दिल्ली में 25 साल से कम उम्र के युवा शराब नहीं पी सकते, पर कम्युनिटी अगेंस्ट ड्रंकेन ड्राइविंग द्वारा कराए गए हाल के एक सर्वे के अनुसार पब में जाने वाले 80 फीसद से अधिक युवा 25 साल से कम उम्र के होते हैं।

भारत में कांट्रैक्ट एक्ट के अनुसार 18 वर्ष से कम उम्र के बच्चों के साथ सोशल मीडिया कंपनियों द्वारा किए गए अनुबंध या एग्रीमेंट्स गैर-कानूनी हैं। दिल्ली उच्च न्यायालय में गोविंदाचार्य मामले में सरकार द्वारा दिए गए हलफनामे के अनुसार 13 वर्ष से कम उम्र के बच्चे सोशल मीडिया ज्वाइन नहीं कर सकते और 13 से 18 उम्र के बच्चे माता-पिता के संरक्षण में ही सोशल मीडिया का हिस्सा बन सकते हैं। सोशल मीडिया कंपनियां अपना कारोबार बढ़ाने के लिए गलत जन्म तारीख के माध्यम से बच्चों को फर्जी एकाउंट बनाने के लिए प्रेरित करती हैं। बीबीसी और टीसीएस द्वारा कराए गए सर्वे के अनुसार 10 से 12 वर्ष की आयु के तीन चौथाई बच्चे और 13 से 18 वर्ष की आयु के 96 फीसद बच्चे सोशल मीडिया से जुड़ गए हैं। सोशल मीडिया से यौन पिपासु अपराधियों द्वारा बच्चों का पोर्नोग्राफी, ड्रग्स एवं रेव पार्टियों के लिए इस्तेमाल के साथ पोर्नोग्राफी से दुष्कर्म और टीन प्रेग्नेंसी के मामलों में खासी बढ़ोतरी हो रही है। आखिर पोर्नोग्राफी के बाजार से बड़ा मुनाफा कमाने वाली इंटरनेट कंपनियों की कारस्तानी का खामियाजा देश और समाज क्यों भुगते? कानून के सर्वमान्य सिद्धांत के अनुसार जो करे सो भरे। टेलीकॉम कंपनियों की 30 से 70 फीसद तक की आमदनी पोर्नोग्राफी डाटा की बिक्री से होती है। देश में सभी बड़े व्यापारी अब जीएसटी का रजिस्ट्रेशन कराने के लिए विवश हैं। यदि इंटरनेट कंपनियां और भारत में व्यापार कर रहीं सभी वेब साइट्स के लिए जीएसटी के तहत रजिस्ट्रेशन की अनिवार्यता का नियम लागू हो जाए तो पोर्नोग्राफी के गैर-कानूनी कारोबार की कमर ही टूट जाएगी। उच्चतम न्यायालय के अजब आदेशों से तो कानून और संविधान का माखौल ही बनता रहेगा।

जनसत्ता

Date: 28-07-17

हरित क्रांति के नाम पर

मार्च-अप्रैल में इकतालीस दिनों तक प्रदर्शन करने के बाद तमिलनाडु के किसान एक बार फिर जंतर-मंतर पर जुट गए हैं। प्रदर्शन के अनोखे तरीके अपनाने वाले ये किसान इस बार बड़े स्तर पर आंदोलन की तैयारी के साथ आए हैं। इनका कहना है कि तमिलनाडु में पिछले 140 सालों का सबसे भयानक सूखा पड़ा है। पिछले चार महीनों में करीब चार सौ किसानों ने खुदकुशी कर ली। सूखा राहत के नाम पर सरकार ने तीन हजार रुपए दिए हैं। इतने में कैसे गुजारा हो सकता है? तमिलनाडु में तो ऐतिहासिक सूखा पड़ने से किसान बदहाल हैं लेकिन जिन सूबों में अच्छी बारिश और बंपर फसल हुई है वहां के किसानों की भी माली हालत ठीक नहीं है। यही कारण है कि कई राज्यों में किसानों की कर्जमाफी के लिए आंदोलन चल रहे हैं। राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो (एनसीआरबी) के मुताबिक 1995 से लेकर 2016 तक पूरे देश में कर्ज, सूखा, गरीबी, भुखमरी के चलते तीन लाख से ज्यादा किसान **आत्महत्या** कर चुके हैं।

किसानों की माली हालत सुधारने के लिए **विशेषज्ञ** सुझाव देते रहते हैं कि कृषि संबंधी आधारभूत ढांचा **सुदृढ़** बनाया जाए। इनमें प्रमुख है सिंचाई सुविधा का विस्तार, किसानों को समय पर रियायती दर पर बिजली, बीज-उर्वरक-रसायन की समय पर उपलब्धता, ग्रामीण इलाकों को पक्की सड़कों से जोड़ना, समर्थन **मूल्य** पर कृषि उपज की सरकारी खरीद, आदि। यहां सबसे अहम सवाल यह है कि क्या इन सुविधाओं की उपलब्धता पर किसानों की बदहाली दूर हो जाएगी? इस सवाल का उत्तर पाने के लिए खेती-किसानी संबंधी इन सुविधाओं की कसौटी पर देश के सबसे अग्रणी राज्य पंजाब को परखना श्रेयस्कर होगा। हरित क्रांति के अगुआ रहे पंजाब के समतल मैदान में उपजाऊ मिट्टी पाई जाती है और यहां के 98.5 फीसद खेतिहर रकबे को सिंचाई सुविधा **उपलब्ध** है। अस्सी फीसद सिंचाई भूजल से होती है, जिसके लिए किसानों को लगभग मुफ्त में बिजली दी जाती है। राज्य में बारहमासी नहरों का सुदृढ़ जाल बिछा है। सभी गांव पक्की सड़कों से जुड़े हैं। पंजाब में अनाज की खरीद व्यवस्था देश में सबसे अच्छी है। राज्य **में** नब्बे फीसद अनाज न्यूनतम समर्थन मूल्य पर खरीदा जाता है। बैंकिंग सुविधा का पर्याप्त विस्तार है।

कृषिगत आधारभूत ढांचे के बल पर पंजाब **में** शुरू में तो खेती-किसानी समृद्धि की बहार लेकर आई लेकिन जैसे-जैसे खेती के परंपरागत आधार छीजने लगे वैसे-वैसे खेती लगातार बदहाली की ओर बढ़ती चली गई। हरित क्रांति के **शुरुआती** वर्षों अर्थात 1972 से 1986 तक पंजाब में कृषि विकास दर 5.7 फीसद रही, जबकि इस दौरान कृषि विकास दर का राष्ट्रीय औसत महज 2.3 फीसद था। इसके बाद राज्य में हरित क्रांति की चमक फीकी पड़ने लगी। 1987 से 2005 के बीच राज्य में कृषि विकास दर घट कर तीन फीसद रह गई जो कि राष्ट्रीय औसत 2.9 फीसद से कुछ ही बेहतर थी। अगले एक दशक अर्थात 2006 से 2015 के बीच पंजाब में कृषि विकास दर घट कर 1.6 फीसद रह गई, जबकि इस दौरान **राष्ट्रीय** औसत पंजाब से दो गुने से ज्यादा (3.5 फीसद) रहा। चूंकि हरित क्रांति के दौर में स्थानीय फसल प्रणाली की उपेक्षा करके फसलें ऊपर से थोपी गई थीं इसलिए राज्य की मिट्टी की उर्वरता **में** ह्रास, भूजल स्तर नीचे जाने, कीटनाशकों के कारण प्रदूषण जैसी समस्याएं भी सामने आईं। खेती के घाटे का सौदा बनते ही किसानों की ऋणग्रस्तता में तेजी से इजाफा हुआ और कई मौकों पर यह **ऋणग्रस्तता** उन्हें फांसी के फंदे तक पहुंचाने लगी।

कृषि के उन्नत आधारभूत ढांचे की मौजूदगी के बावजूद पंजाब में जिस तरह खेती बदहाल होती जा रही है उससे हरित क्रांति पर सवाल उठना स्वाभाविक है। इसका जवाब तभी मिलेगा जब हम भुखमरी से मुक्ति दिलाने के तमगे से नवाजी गई हरित क्रांति का निर्मम विश्लेषण करें। कड़वी हकीकत यह है कि **हरित** क्रांति लोगों का पेट भरने के लिए नहीं, बहुराष्ट्रीय कंपनियों को अकूत मुनाफा कमाने का मौका देने के लिए शुरू हुई थी। इसकी **शुरुआत** द्वितीय विश्वयुद्ध से होती है। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद संयुक्त राष्ट्र की स्थापना हुई जिससे दुनिया में आपसी टकरावों को बातचीत के जरिए हल करने की उम्मीद बंधी। दूसरे शब्दों में, सीधे युद्ध की स्थितियां खत्म हो गईं। इससे विकसित देशों की हथियार, गोला-**बारूद**, रसायन बनाने वाली कंपनियां बेरोजगार हो गईं। अपनी बेकारी दूर करने के लिए इन कंपनियों ने रसायन, कीटनाशक, उर्वरक आदि बनाना शुरू कर दिया। चूंकि विकसित देशों में इनकी बिक्री की सीमित संभावनाएं थीं, इसलिए उन्होंने तीसरी दुनिया के देशों में **हरित** क्रांति का शिगूफा छोड़ा। इनके दबाव में आकर संबंधित देशों की सरकारों ने तीसरी दुनिया के देशों के शासनाध्यक्षों को तरह-तरह के प्रलोभन देकर, प्रतिबंध लगा कर और भुखमरी का हौवा दिखा कर हरित क्रांति की राह में आने वाली बाधाओं को दूर किया। इस प्रकार जो कीटनाशक व रसायन विकसित देशों में प्रतिबंधित थे उन्हें

विकासशील देशों में डंप किया जाने लगा। इसका दुष्प्रभाव मिट्टी, पानी, पशुचारे व अनाज के माध्यम से मनुष्यों व पशुओं के शरीर में भी पहुंचा और वे तरह-तरह की बीमारियों के शिकार होने लगे। चूंकि ये बीमारियां अलग किस्म की थीं इसलिए इनके इलाज के लिए दवा खोजने-बेचने का दायित्व भी विकसित देशों की कंपनियों ने अपने कंधों पर ले लिया। अब इनका **व्यापार** दिन दूनी रात चौगुनी गति से बढ़ने लगा। कभी जीवन के संध्याकाल में होने वाली कैंसर, मधुमेह, हृदय रोग जैसी बीमारियां आज **सर्दी**-जुकाम सरीखी हो गई हैं तो इसका कारण हरित क्रांति की विकृतियां ही हैं।

जाहिर है, दुनिया को अदृश्य कुपोषण और नाना प्रकार की बीमारियों के बाड़े में धकेलने का काम **एग्रीबिजनेस** कंपनियों ने हरित क्रांति के जरिए किया। अपनी कुटिल चाल को आगे बढ़ाने के लिए ये कंपनियां अब तीसरी दुनिया को दूसरी **हरित** क्रांति का सब्जबाग दिखा रही हैं। इन कंपनियों का कहना है कि हर रोज भोजन की लाइन में बढ़ने वाले 2,19,000 लोगों (अर्थात दुनिया की आबादी में हर साल जुड़ने वाले 8 करोड़ नए लोगों) का पेट भरने के लिए दूसरी हरित क्रांति को अपनाना ही होगा। लेकिन वे इस कड़वी हकीकत पर सन्नाटा खींचे हैं कि जब पहली हरित क्रांति के कारण आज दुनिया में 11 अरब लोगों के लिए पर्याप्त अनाज पैदा हो रहा है तो दूसरी हरित क्रांति की जरूरत ही क्या है? दूसरे, इतने अनाज उत्पादन के बावजूद आज तकरीबन 80 करोड़ लोग भूखे पेट सोने को क्यों मजबूर हैं?दूसरी हरित क्रांति की राह में आने वाली बाधाओं को दूर करने के क्रम में एग्रीबिजनेस कंपनियां खेती के मूल आधार (बीज) पर आधिपत्य जमाने की मुहिम छेड़े हुए हैं। आज भारत के गांवों में बिजली, पानी के दर्शन भले न हों- मोनसेंटो, सिन्जेटा, पायनियर जैसी कंपनियों के हाइब्रिड बीज जरूर मिल जाएंगे। यह नजारा तीसरी दुनिया के किसी भी देश में देखा जा सकता है। इस प्रक्रिया में देसी बीज तेजी से लुप्त होते जा रहे हैं। ये कंपनियां अपने बीजों को लोकप्रिय बनाने के लिए तीसरी दुनिया के कृषि शोध केंद्रों व उनके वैज्ञानिकों को अनुदान देकर खरीद रही हैं। यही कारण है कि ये संस्थान व इनसे जुड़े वैज्ञानिक किसानों की जरूरतों के बजाय बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा चिह्नित फसलों पर अनुसंधान कर रहे हैं। सच्चाई यह है कि दूसरी हरित **क्रांति** एग्रीबिजनेस कंपनियों की कुटिल चाल है। इस प्रक्रिया में कृषि उत्पादन भले बढ़े लेकिन अनाज के ढेर के बगल में भुखमरी-कुपोषण के शिकार लोगों और नई-नवेली बीमारियों से ग्रस्त भीड़ में कमी नहीं आएगी।

Live हिन्दुस्तान .com

Date: 28-07-17

इस जख्म को तत्काल भरना होगा

सुदीप चक्रवर्ती वरिष्ठ पत्रकार (ये लेखक के अपने विचार हैं)

पिछले दिनों संसद में माओवादिओं के साथ शांति-वार्ता की बात उठी। गृह राज्य मंत्री हंसराज गंगाराम अहीर ने 18 जुलाई को लोकसभा में यह कहा कि 'अगर वामपंथी अतिवादी हिंसा का रास्ता छोड़ते हैं और लोकतांत्रिक प्रक्रिया व भारत के संविधान में आस्था जताते हैं, तो केंद्र सरकार उनसे बातचीत कर सकती है।'यह एक ऐसा राष्ट्रवादी रुख है, जो हमने ऐसे मामलों में अक्सर देखा है। ठीक इसी तरह के नजरिये का नतीजा हमने जम्मू-**कश्मीर** में देखा है, जहां तीन साल तक हालात बदतर रहे और फिर मजबूरन केंद्र सरकार को यह घोषणा करनी पड़ी कि वह राजनीतिक संवाद के लिए तैयार है। वैसे, 2015 से यही सरकार नगा **विद्रोहियों** के साथ शांति-वार्ता की गंभीर कोशिश कर रही है, जबकि उन्होंने न तो अपने लड़ाकों को प्रशिक्षित करना व उन्हें हथियारबंद बनाना बंद किया और न ही नगालैंड व मणिपुर, असम और अरुणाचल **प्रदेश** के कुछ हिस्सों में समानांतर अधिकार छोड़ा। इतना ही नहीं, उन्होंने ऐसा कुछ भी नहीं किया, जिससे लगे कि उन्होंने भारतीय लोकतंत्र और संविधान में आस्था जताई हो। तो फिर माओवादियों के साथ बातचीत करने के लिए ऐसी शर्त क्यों थोपी जा रही है, जबकि वे भारत को अपना घर कहते हैं और वैचारिक रूप से मतभेद होने के बाद भी किसी तरह के बंटवारे की कोई मंशा नहीं जताते?

हालांकि, अप्रैल, 2014 में शांति-सुलह का एक छोटा मौका हमारे हाथ आया था, जब भारतीय **कम्युनिस्ट** पार्टी (माओवादी) के एक प्रवक्ता अभय (छद्म नाम) ने बयान जारी करके देश के सबसे बड़े विद्रोही संगठन की तरफ से सशर्त **युद्ध**-विराम की पेशकश की थी। दूसरी तमाम शर्तों के साथ उस बयान में यह मांग भी की गई थी कि सीपीआई (माओवादी) को सियासी दल की मान्यता दी जाए, उस पर और उसके सहयोगी संगठनों पर से प्रतिबंध हटाया जाए और शांति-वार्ता शुरू करने से पहले **गिरफ्तार** माओवादी नेताओं को रिहा

किया जाए। मैंने उस वक्त यह लिखा था कि माओवादियों की मंशा या तो भारतीय जनता पार्टी (भाजपा) की अगुवाई में बनने वाली राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन सरकार (तब इस गठबंधन की जीत तय दिख रही थी) के साथ शांति-वार्ता करने की है या सीधी जंग छेड़ने की या फिर कुछ-कुछ दोनों। मेरा यही मानना था कि माओवाद के विस्तार की संभावना बनी रहे, इसके लिए माओवादी तीसरे विकल्प पर बढ़ सकते हैं।

असल में, कांग्रेस के नेतृत्व में बना संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन 2010 के मध्य में ही शांति-वार्ता की राह बंद कर चुका था। तब वार्ता के लिए माओवादियों की तरफ से नामित आजाद को न सिर्फ पुलिस टीम ने अगवा कर लिया था, बल्कि पुलिस टीम के हाथों ही उसकी मौत भी हुई। उस वक्त देश के गृह मंत्री पी चिदंबरम थे। बावजूद इसके यूपीए सरकार ने अपना 'एक्शन प्लान' जारी रखा, यानी 'लाल गलियारे में तैनात सुरक्षा बलों की संख्या बढ़ाकर उन्हें मजबूत बनाना, उनके साजो-सामान बढ़ाना व इन्फ्रास्ट्रक्चर को बेहतर करना' और इसके बरक्स 'माओवाद प्रभावित क्षेत्रों के बाशिंदों को सशक्त बनाने के लिए विकास के एजेंडे को आगे बढ़ाना।' नतीजतन, माओवादियों की घेराबंदी और उनके खात्मे का खेल शुरू हो गया। बाद में सरकार ने ठीक वैसा ही करना शुरू किया, जिसकी तोहमत वह माओवादियों पर लगाती रही थी, यानी बातचीत भी, संघर्ष भी। मगर उस दरम्यान कोई ठोस बातचीत नहीं की गई, सिर्फ शांति-वार्ता की कोशिशें हुईं; और वे भी निजी हितों की वेदी पर कुर्बान की जाती रहीं। ऐसा करने के पीछे सोच यह थी कि धीरे-धीरे घेराबंदी से माओवादियों को कुछ वक्त मिलेगा, पर ज्यादा नहीं। विद्रोह का चक्र सत्ता-प्रतिष्ठानों के बड़े व अनवरत दबाव के कारण टूट की स्थिति में पहुंच गया। माओवादी नेतृत्व की पहली कतार के नेता जेल में डाल दिए गए और संघर्ष में जान गंवाने व समर्पण करने के कारण उसके लड़ाके कम हो गए।

साल 2014 में भाजपा के घोषणापत्र में माओवादी समस्या का समाधान इसी तरह निकालने की बात कही गई। उसमें कहा गया था, 'माओवादी उग्रवाद से मिल रही चुनौतियों के समाधान के लिए एक राष्ट्रीय योजना बनाई जाएगी, जो संबंधित राज्य सरकारों की भागीदारी व सुझाव से तैयार होगी। विद्रोही गुटों के साथ बातचीत सशर्त और सांविधान के दायरे में ही होगी।' अहीर का संसद में दिया गया बयान दरअसल पिछले सरकार की कार्यशैली की ही अगली कड़ी है। मगर नहीं भूलना चाहिए कि यह नीति हमें कई और वर्षों तक संघर्ष की दलदल में उतार सकती है, क्योंकि प्रतिकूल हालात के बाद भी माओवादी शायद ही हार मानने को तैयार हों। यह सही है कि कई विद्रोही अपनी जान गंवा रहे हैं, लेकिन पुलिस, अद्र्धसैनिक बलों के जवानों व आम लोगों की जान भी उसी रफ्तार में जा रही है। और इस बीच शांति व समृद्धि का अनमोल मौका हम गंवा रहे हैं।अगर भाजपा देश की हृदयस्थली में चल रही आजीविका, पहचान व गरिमा की इस जंग को खत्म करने की ईमानदार कोशिश करती है, तो इसका असर सब जगह दिखेगा। ऐसा करके वह विवादास्पद आर्थिक व मौद्रिक नीति से परे और उग्र-राष्ट्रवाद का उपयोग वर्चस्व के हथियार के रूप में करने से इतर एक न्यायसंगत सरकार और पार्टी की छवि बनाएगी। ऐसे मामलों में सरकार अगर अपनी जिद व अदूरदर्शिता कम करती है, तो माओवादियों को भी अपनी दिखावटी नैतिकता से सबक सीखना होगा।माओवादी विद्रोही अनवरत अपनी क्रूरता दिखा रहे हैं। आम यात्रियों के साथ-साथ गाड़ियां भी आग के हवाले की जा रही हैं। जिन्हें वे गद्दार मानते हैं, उनके खिलाफ कंगारू कोर्ट (भीड़ के सामने तत्काल फैसला सुनाने और सजा देने की व्यवस्था) लगाए जा रहे हैं, जिनमें आरोपियों को गोली मारने, पीटने, फांसी पर लटकाने जैसी सजाएं दी जा रही हैं। सैनिकों के शव को क्षत-विक्षत किए जा रहे हैं। रेल पटरियां अब भी उखाड़ी जा रही हैं और नाबालिगों की भर्ती जारी है। लिहाजा इस जंग का अंत वक्त की जरूरत है। हमें अर्थव्यवस्था को नुकसान पहुंचाने वाले और लोकतंत्र का मजाक उड़ाने वाले इस जख्म को तत्काल भरना ही होगा।